P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-IX* May -2016

ध्यान एवं उसका मनुष्य पर प्रभाव

मोनिका सिंह
शोध छात्रा,
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी.इ.आई दयालबाग एजुके"ानल इन्स्टीट्यूट, आगरा

सारांश

भारतीय योगानुसार हमारे कार्यकलाप केवल बुद्धि के द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि कुछ और कारक इसके लिये जिम्मेदार होते हैं जिन्हें हम मन, चित्त एवं अहंकार कहते हैं। किसी ज्ञान को लेने के लिये आव"यक है कि व्यक्ति का मन उस इन्द्रिय के साथ हो जिसका वह ज्ञान लेना चाहता है। एकाग्रता की घनीभूत अवस्था जिसमें व्यक्ति एवं उसका लक्ष्य एकाकार हो, ध्यान कहलाता है। ध्यान अनाव"यक कल्पना व विचारों को मन से निकालकर शुद्ध और निर्मल मौन में चले जाना है। ध्यान जैसे जैसे गहराता है व्यक्ति साक्षी भाव में स्थित होने लगता है उस पर किसी भाव, कल्पना एवं विचारों का क्षण मात्र भी प्रभाव नहीं पङता। ध्यान के समय व्यक्ति का मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सारी आन्तरिक शक्तियाँ अपने अपने अवयवों में विभाजित हो जाती हैं व ई"वर से एकाकार हो जाता है। शुरू में ध्यान का अभ्यास आँख बंद करके किया जाता है। फिर अभ्यास बढ़ जाने पर आँख बंद हो या खुली, साधक अपने स्वरूप के साथ जुङा रहता है। फिर वह किसी काम को करते हुए भी ध्यान की अवस्था में रह सकता है।

मुख्य शब्द : ध्यान, योग, धारणा, मन, इन्द्रिय, एकाग्रता

प्रस्तावना

अध्यापक गण इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि पढाते समय कभी कभी कुछ बच्चे ि"ाक्षक के सामने होते हुये भी मानसिक रूप से कहीं और होते हैं। ि"ाक्षक के सामने आँख कान होते हुये भी वे देख सुन नहीं पाते और ि"ाक्षक के पूछने पर कुछ भी बताने में असमर्थ रहते है। ि"ाक्षक कहते हैं ''तुम्हारा ध्यान कहाँ था ? मैने इतना कहा और तुम कुछ भी न सुन सके।''

वास्तव में आँख, कान, नाक ज्ञान लेने में समर्थ नहीं है। हम ज्ञान तब ले पाते है जब हमारा मन इन इन्द्रियों के साथ हो। भारतीय योगानुसार हमारे कार्यकलाप केवल बुद्धि के द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि कुछ और कारक इसके लिये जिम्मेदार होते हैं जिन्हें हम मन, चित्त एवं अहंकार कहते हैं। सामूहिक रूप से इन्हें अन्तःकरण कहा गया है जिसका अर्थ होता है अन्दर की इन्द्रियाँ। किसी ज्ञान को लेने के लिये आव"यक है कि व्यक्ति का मन उस इन्द्रिय के साथ हो जिसका वह ज्ञान लेना चाहता है।

एक मात्र ध्यान ही ऐसा तत्व है कि उसे साधने से सभी स्वतः ही सधने लगते हैं लेकिन योग के अन्य अंगों पर यह नियम लागू नहीं होता। आज के मानव की जरूरत है ध्यान। ध्यान से शरीर और मन के सारे कष्ट दूर किये जा सकते है।

उद्देश्य

मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर ध्यान का प्रभाव ।

ध्यान क्या है?

ध्यान क्रिया के प्रतिपादक **महर्षि पतंजलि** है। इन्होनें इसे क्रियायोग की संज्ञा प्रदान की है। क्रियायोग में प्राणायाम एक सरल प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से प्रफुल्लित हो जाता है।

उपासना की तीन क्रियाएं है– धारणा, ध्यान एवं प्रत्याहार। किसी एक ध्येय को पकड़ कर मन को रोकना 'धारणा' कहलाती है। जब ध्याता अथवा ध्यान करने वाला अपने ध्येय में समा जाता है और अपना व अपने ध्येय का ज्ञान खो बैठता है तो उसे ध्यान कहते हैं। ध्येय को छोड़कर जब मन किसी और विषय की ओर दौड़ जाता है अभ्यासी उसे फिर खींच कर ध्येय में लगाने की को"ि"ा करता है तो उसे 'प्रत्याहार' कहा जाता है। इन तीनों क्रियाओं के द्वारा उपासना योग आरम्भ होता है।

उपासना के अन्तर्गत धारणा में हमें अपना ज्ञान रहता है, अपने कर्म का ज्ञान रहता है और अपने ई"वर का ज्ञान रहता है। धीरे–धीरे धारणा में हम आगे बढते हैं। इस समय हम अपने मूल को भूल जाते है। कर्म का भी ख्याल नहीं रहता वरन् केवल ध्येय रहता है। यह धारणा की ऊँची और आत्मिक अवस्था होती है। ध्यान की अवस्था वह अवस्था है जिसमें धारणा करते करते इतने बेहोश

हो जायें कि ध्येय का ज्ञान भी जाता रहे , उसके सुधि भी न रहे, ध्याता व ध्येय दोनों लापता हो जायें यह उपासना की सिद्धि कहलाती है। ध्याता–ध्येय व ध्यान की त्रिपुटी नष्ट करके ही साधक उसके समीप पहुँचने का अधिकारी बन पाता है।

जहाँ चित्त को लगाया जाए उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। धारणा का अर्थ चित्त को एक जगह लाना या ठहराना है लेकिन ध्यान का अर्थ है जहाँ भी चित्त ठहरा हुआ है उसमें वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। उसमें जाग्रत रहना ध्यान है।

मन एवं मस्तिष्क

मस्तिष्क का वह हिस्सा जो मस्तिष्क को वैचारिक रूप से क्रिया"ाील बनाये रखता है, इसके लिये यह स्वयं वैचारिक तरंगे पैदा करता है, मन कहलाता है। यह मन हर्ष, शोक, मोह, लोभ, क्रोध एवं काम आदि मनोभावों से निरन्तर दूषित होता रहता है। इस मन को किसी लक्ष्य पर केन्द्रित करना एकाग्रता कहलाती है। एकाग्रता की घनीभूत अवस्था जिसमे व्यक्ति एवं उसका लक्ष्य एकाकार हो, ध्यान कहलाता है। ऐसा होते ही व्यक्ति का विराट मस्तिष्क से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और व्यक्ति महान वैचारिक शक्तियों का मालिक हो जाता है।

हमारे मन में एक साथ असंख्य कल्पना और विचार चलते रहते हैं। इससे मन मस्तिष्क में कोलाहल सा उत्पन्न होने लगता है जिससे मानसिक अ"ाांति पैदा होती है। ध्यान अनाव"यक कल्पना व विचारों को मन से निकालकर शुद्ध और निर्मल मौन में चले जाना है। ध्यान जैसे जैसे गहराता है व्यक्ति साक्षी भाव में स्थित होने लगता है उस पर किसी भाव, कल्पना एवं विचारों का क्षण मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता। मन और मस्तिष्क का मौन हो जाना ही ध्यान का प्राथमिक स्वरूप है। विचार, कल्पना और अतीत के सुख–दुख में जीना ध्यान विरूद्ध है। ध्यान में इन्द्रियाँ मन के साथ, मन बुद्धि के साथ और बुद्धि अपने स्वरूप आत्मा में लीन होने लगती है। शुरू में ध्यान का अभ्यास आँख बंद करके किया जाता है। फिर अभ्यास बढ़ जाने पर आँख बंद हो या खुली, साधक अपने स्वरूप के साथ जुड़ा रहता है। फिर वह किसी काम को करते हुए भी ध्यान की अवस्था में रह सकता है।

ध्यान हेतु एकाग्रता एवं निरोध

शान्ति की प्राप्ति के लिये जब मन पर अधिकार जमाने का उद्योग करने बैठते हैं तो दो अवस्थाओं से हमको गुजरना होता है। प्रथम– एकाग्रता और द्वितीय –निरोध। एकाग्रता में मन को एक ध्येय पर, एक बिन्दु पर रोका जाता है। चंचल मन को एकाग्रता से अधिक कोई काम बोझिल नहीं मालूम देता। शास्त्र कहता है

वृत्तिसारूप्यमितरत्र'' इसका अर्थ है कि मनुष्य का दिमागी शरीर उसी शकल में ढाला जाता है जिसका ख्याल कायम किया जाता है।

स्थिरता पूर्वक एक ही शकल को दिल में कायम रखना और उसी साँचें में सारे अन्तःकरण को ढाल देना 'एकाग्रता' कहलाती है। एकाग्रता की उच्चस्तरीय अवस्था 'निरोध' है।

महर्षि पतंजलि ने इस बात पर जोर दिया है कि चित्त को शान्त करो, विचार एवं वृत्तियों का निरोध करो, वही द"ाि और वही आनन्द है, सूत्र है

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अर्थात् – चित्त की वृत्तियों के निरोध से योग या मिलाप होता है।

ध्यान के प्रकार

1. जडात्मक ध्यान।
2. ज्ञानात्मक ध्यान।

किसी जड लक्ष्य का ध्यान करने से शक्ति तो प्राप्त होती है परन्तु मस्तिष्क के विकार शान्त नहीं होते हैं। जीवन के सफल संचालन हेतु है कि हम केवल शक्ति"ाली ही न बने अपितु पवित्र भी बनें। हमारा समस्त समाज एवं प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण सकारात्मक हो, हमारी प्रवृत्ति समन्वयवादी हो।

भारतीय मनीषियों ने ज्ञानात्मक ध्यान हेतु बताया कि इस प्रकार के ध्यान हेतु ऐसे परमात्मा या पूर्ण पुरुष को चुने जिसके मूलभूत भाव काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि समता में हों।

महर्षि पतंजलि के अनुसार ध्यान की अवस्थाएं

महर्षि पतंजलि के अनुसार मुक्ति के लिये 'प्रज्ञा' आव"यक है। प्रज्ञा का अर्थ है – आत्म दृष्टि के द्वारा इस सत्य का द"ाि कि आत्मा नित्यमुक्त शुद्ध चैतन्य स्वरूप और शरीर तथा मन से सर्वथा भिन्न है। चित्त की शुद्धि के लिए ध्यान की अवस्थाएं इस प्रकार है–

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

ये आठों योगांग कहलाते हैं।

यम

योग का प्रथम अंग है यम। इसके निम्नलिखित अंग है–

अहिंसा

किसी जीव को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचाना।

सत्य

किसी से किसी तरह का झूठ नहीं बोलना।

अस्तेय

चोरी नहीं करना।

ब्रह्मचय

विषय वासना की आर नहीं जाना।

अपरिग्रह

लोभ वश अनावश्यक वस्तु ग्रहण नहीं करना।

योगी के लिये इनका साधन आव"यक है, क्योंकि मन को सबल बनाने के लिये शरीर को सबल बनाना आव"यक है। जो काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, उसका मन या शरीर प्रबल नहीं रह सकता।

नियम

योग का दूसरा अंग है नियम या सदाचार का पालन। इसके निम्नलिखित अंग है–

शौच

बाह्यशुद्धि तथा आभ्यन्तर शुद्धि।

संतोष

उचित प्रयास से जितना प्राप्त हो उससे संतुष्ट रहना।

तप

कठिन व्रत का पालन करना।

स्वाध्याय

नियम पूर्वक धर्मग्रन्थों का अध्ययन करना।

ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर का ध्यान और उन पर अपने आप को छोड देना।

आसन

आसन शरीर का साधन है। इसका अर्थ है शरीर को ऐसी स्थिति में रखना जिससे नि"चल होकर सुख के साथ देर तक रह सकते है।

प्राणायाम

प्राणायाम का अर्थ है "वास का नियन्त्रण। इस क्रिया के तीन अंग होत हैं–

पूरक

श्वास भीतर खींचना।

कुंभक

श्वास को भीतर रोकना।

रेचक

नियमित विधि से श्वास छोडना।

प्रत्याहार

प्रत्याहार का अर्थ है इन्द्रियों को अपने अपने बाह्य विषय से खींचकर हटाना और उन्हें मन के व"ा में रखना।

धारणा

धारणा का अर्थ है चित्त को अभीष्ट विषय पर जमाना।

ध्यान

ध्यान का अर्थ है ध्येय विषय का निरन्तर मनन। अर्थात् उसी विषय को लेकर विचार का अनवच्छिन्न प्रवाह। इसके द्वारा विषय का सुस्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

समाधि

इस अवस्था में मन ध्येयविषय में इतना लीन हो जाता है कि वह उसमें तन्मय हो जाता है और अपना कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है।

उपनिषद के अनुसार ध्यान की अवस्थाएँ

उपनिषद के अनुसार जीव के विभिन्न कोष हैं–

1. अन्नमयकोष
2. प्राणमयकोष
3. मनोमयकोष
4. विज्ञानमयकोष
5. आनन्दमयकोष

अन्नमयकोष

स्थूल शरीर अन्न पर आश्रित है। इसे अन्नमय कोष कहा गया है। अन्न ही परम सत्य है।

प्राणमयकोष

अन्नमयकोष के अन्दर प्राणमयकोष है। यह शरीर में गति देने वाली प्राण शक्तियों से बना है। प्राण ही परम सत्य है।

मनोमयकोष

प्राणमयकोष के अन्दर मनोमयकोष है। यह मन पर निर्भर है। मन ही परम सत्य है।

विज्ञानमयकोष

मनोमयकोष के अन्दर विज्ञानमयकोष है। यह बुद्धि पर निर्भर है। यहाँ ज्ञाता व ज्ञेय का भेद करने वाला ज्ञान निहित है।

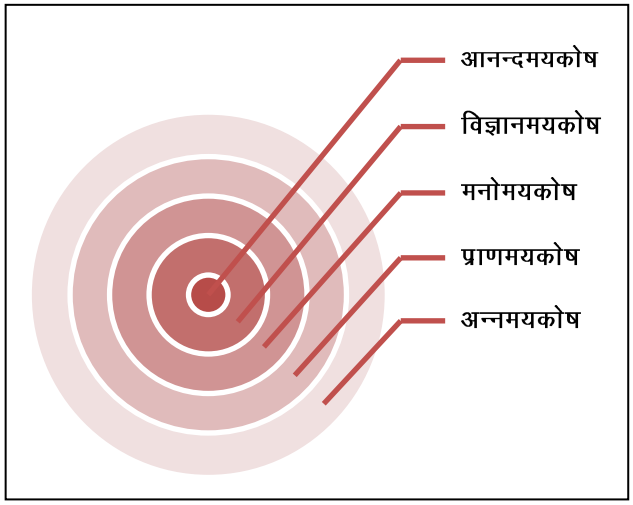

https://www.pinterest.com

आनन्दमयकोष

विज्ञानमयकोष के अन्दर आनन्दमयकोष है। यहाँ आनन्द (आत्मा) ही परम सत्य है। यह आत्मा का सार है। यही ब्रह्म है। यहाँ ज्ञाता व ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है, यह शुद्ध चैतन्य है, इसमें आनन्द का निवास है। इस प्रकार ध्यान की चार अवस्थाएं है–

1. जाग्रत अवस्था
2. स्वप्न की अवस्था
3. सुशुप्तावस्था
4. तुरीयावस्था

जाग्रत अवस्था

यह चेतना की पहली अवस्था है। इस अवस्था में ज्ञान या चेतना का विषय भौतिक जगत या बाह्य संसार है। यहाँ बाह्य संसार का ज्ञान होता है। इस अवस्था में चेतना को **'वैश्वानर'** कहते है।

स्वप्न की अवस्था

यह दूसरी अवस्था है। इस अवस्था में ज्ञान का विषय आन्तरिक होता है। इस अवस्था में चेतना को **'तेजस'** कहते है।

सुषुप्तावस्था

सुषुप्ति की अवस्था में जीवात्मा 'प्रज्ञा' कहलाता है। इस अवस्था में आत्मा बाह्य और आन्तरिक किसी भी विषय का भोग नहीं करता वरन् केवल आनन्द का उपभोग करता है। इस अवस्था की चेतना **'प्रज्ञा'** कहलाती है।

तुरीयावस्था

यह आत्म चेतना की अवस्था है। इस अवस्था में जीवात्मा को आत्मा कहा जाता है। यह शुद्ध चेतन्य है। इसी आत्मा को परम तत्व माना गया है। तुरीयावस्था की आत्मा ही ब्रह्म है।

गीता के अनुसार ध्यान की अवस्थाएं

ओम् शब्द को गीता में अत्याधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। गीता के अनुसार ओम् शब्द के उच्चारण के द्वारा परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। गीता में भी ध्यान के लिये क्रियायोग शब्द प्रयोग किया गया है। श्रीमद्भगवदगीता में ध्यान की विभिन्न अवस्थाएं बतायी हैं–

प्रथम अवस्था

ध्यान क्रिया की प्रथम अवस्था में ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

द्वितीय अवस्था

ज्ञानेन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित करने के पश्चात् प्राण पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

तृतीय अवस्था

तृतीय अवस्था में मस्तिष्क पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। यह नियन्त्रण मेरुदण्ड में स्थित विभिन्न चक्रों के आधार पर किया जाता है।

चतुर्थ अवस्था

इस अवस्था में मनस् पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

पंचम अवस्था

मनस् पर नियन्त्रण स्थापित होने से विवेक का विकास प्रारम्भ होने लगता है।

षष्ठ अवस्था

विवेक की जागृति होने से आत्मा एवं परमात्मा का मिलन होता है एवं आत्मानुभूति होती है।

ध्यान के चक्र

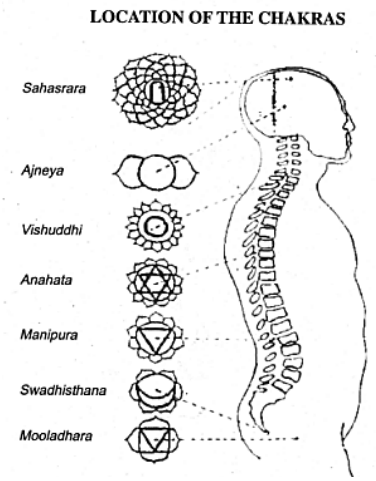

yogapoint.com

ध्यान का प्रभाव

ध्यान हमारे तन, मन और आत्मा के बीच लयात्मक सम्बन्ध है। ध्यान के द्वारा हमारी ऊर्जा केंद्रित होती है। ऊर्जा केंद्रित होने से मन और शरीर में शक्ति का संचार होता है एवं आत्मिक बल मिलता है ध्यान से वर्तमान को देखने व समझने में मदद मिलती है।

ध्यान का नियमित अभ्यास करने से आत्मिक शक्ति बढ़ती है और मानसिक शांति की अनुभूति होती है। ध्यान से दृष्टि क्षमता बढ़ती है तथा व्यक्ति में निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है। ध्यान से सभी तरह के राग और शोक मिट जाते हैं। ध्यान से हमारा तन, मन और मस्तिष्क पूर्णतः शांति, स्वास्थ्य और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष

जैसे कोई बहती हुई गंगा में एक लोटा गंदा जल उडेलकर पुनः उसी स्थान से जल भरें तो दूषित जल के स्थान पर शुद्ध गंगा जल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान के समय व्यक्ति का मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सारी आन्तरिक शक्तियाँ अपने अपने अवयवों में विभाजित हो जाती हैं व ई"वर से एकाकार हो जाता है जैसे– गंदगी ठहरे पानी में नीचे बैठ जाती है उसी प्रकार मनुष्य अपने सुन्दरतम रूप को प्राप्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयन्द का, हरिकृष्णदासः पातंजलयोग दर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर
2. चतुर्भुज सहाय जी (2001): साधना के अनुभव, साधन प्रेस डेम्पियर नगर, मथुरा
3. चटर्जी एवं दत्ता (1994) भारतीय दर्शन , पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाउस, पटना
4. yogapoint.com
5. https://www.pinterest.com